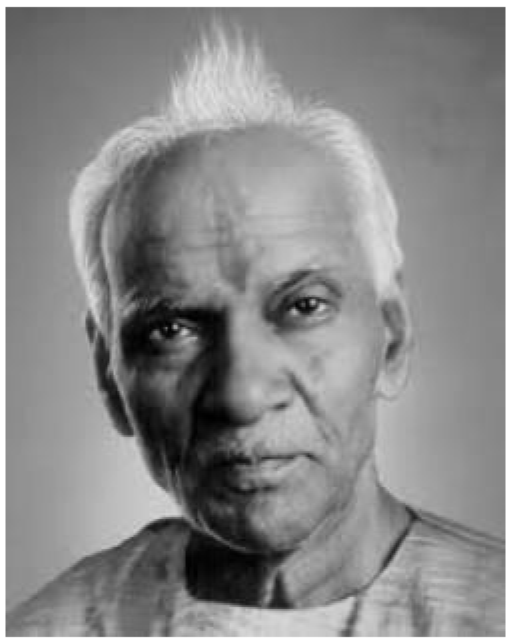
# अन्नमयकोश की सरल एवं व्यावहारिक साधना



## पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री के पांच मुख पांच दिव्य कोश : अन्नमय कोश -१

गायत्री के पांच मुखों मे आत्मा के पांच कोशों मे प्रथम कोश का नाम ' अन्नमय कोश' है | अन्न का सात्विक अर्थ है ' पृथ्वी का रस '| पृथ्वी से जल , अनाज , फल , तरकारी , घास आदि पैदा होते है | उन्ही से दूध , घी , माँस आदि भी बनते हैं | यह सभी अन्न कहे जाते हैं , इन्ही के द्वारा रज , वीर्य बनते हैं और इन्ही से इस शरीर का निर्माण होता है | अन्न द्वारा ही देह बढ़ती है और पुष्ट होती है और अंत मे अन्न रूप पृथ्वी मे ही भष्म होकर या सड़ गल कर मिल जाती है | अन्न से उत्पन्न होने वाला और उसी मे जाने वाला यह देह इसी प्रधानता के कारण 'अन्नमय कोश ' कहा जाता है |

यहाँ एक बात ध्यान रखने की है की हाड -माँस का जो यह पुतला दिखाई पड़ता है वह अन्नमय कोश की अधीनता मे है पर उसे ही अन्नमय कोश न समझ लेना चाहिए | मृत्यु हो जाने पर देह तो नष्ट हो जाती है पर अन्नमय कोश नष्ट नहीं होता है | वह जीव के साथ रहता है | बिना शरीर के भी जीव भूत-योनी मे या स्वर्ग नर्क मे उन भूख -प्यास , सर्दी -गर्मी , चोट , दर्द आदि को सहता है जो स्थूल शरीर से सम्बंधित है | इसी प्रकार उसे उन इन्द्रीय भोगों की चाह रहती है जो शरीर द्वारा ही भोगे जाने संभव हैं | भूतों की इच्छाएं वैसी ही आहार विहार की रहती है , जैसी मनुष्य शरीर धारियों की होती है | इससे प्रकट है की अन्नमय कोश शरीर का संचालक , कारण , उत्पादक उपभोक्ता आदि तो है पर उससे पृथक भी है | इसे सूक्ष्म शरीर भी कहा जा सकता है |

चिकित्सा पद्धतियों की पहुच स्थूल शरीर तक है जबकी कितने ही रोग ऐसे हैं जो अन्न मय कोश की विकृति के कारण उत्पन्न होते हैं और जिसे चिकित्सक ठीक करने मे प्रायः असमर्थ हो जाते हैं|

अन्नमय कोश की स्थिति के अनुसार शरीर का ढांचा और रंग -रूप बनता है | उसी के अनुसार इन्द्रियों की शक्तियां होती हैं | बालक जन्म से ही कितनी ही शारीरिक त्रुटियों , अपूर्णताएं या विशेषताएं लेकर आता है | किसी की देह आराम्भ से ही मोती , किसी की जन्म से ही पतली होती है | आँखों की दृष्टि , वाणी की विशेषता , मष्तिष्क का भोडा या तीव्र होना , किसी विशेष अंग का निर्बल या न्यून होना अन्नमय कोश की स्थिति के अनुरूप होता है | माता -पिता के राज-वीर्य का भी उसमे थोडा प्रभाव होता है पर विशेषता अपने कोश की ही रहती है | कितने ही बालक माता- पिता की अपेक्षा अनेक बातों मे बहुत भिन्न पाए जाते हैं |
शरीर जिस अन्न से बनता - बढ़ता है उसके भीतर सूक्ष्म जीवन तत्व रहता है जो की अन्न मय कोश को बनाता है | जैसे शरीर मे पांच कोश हैं वैसे ही अन्न मे भी तीन कोश हैं ..

१. स्थूल कोश

२. सूक्ष्म कोश

३. कारण कोश

स्थूल मे स्वाद और भार , सूक्ष्म मे पराभव और गुण तथा कारण कोश मे अन्न का संस्कार होता है | जिह्वा से केवल अन्न का स्वाद मालुम होता है , पेट उसके भार का अनुभव करता है , रस मे उसकी मादकता , उष्णता प्रकट होती है | अन्नमय कोश पर उसका संस्कार जमता है | माँस आदि कितने अभक्ष्य पदार्थ ऐसे हैं जो जीभ को स्वादिष्ट लगते हैं , देह को मोटा बनाने मे भी सहायक होते हैं , पर उनमे सूक्ष्म संस्कार ऐसा होता है जो अन्नमय कोश को विकृत कर देता है और उसका परिणाम अदृश्य रूप से आकस्मिक रोगों के रूप मे तथा जन्म जन्मांतर तक कुरूपता एवँ शारीरिक अपूर्णता के रूप मे चलता

है | इसलिए आत्म -विद्या के ज्ञाता सदा सात्विक सुसंस्कारी अन्न पर जोर देते हैं ताकि स्थूल शरीर मे बीमारी, कुरूपता , अपूर्णता , आलस्य एवँ कमजोरी की बढोत्तरी न हो | अभक्ष्य खाने वाले आज नहीं तो भविष्य मे इसके शिकार हो ही जायेंगे | इस प्रकार अनीति से उपार्जित धन या पाप की कमाई प्रकट मे आकर्षक लगने पर भी अन्नमय कोश को दूषित करती हैं और अंत मे शरीर को विकृत तथा चिर रोगी बना देती है | धन संपन्न होने पर भी ऐसी दुर्दशा भोगने के अनेक उदाहरण प्रत्यक्ष दिखाई दिया करते हैं |

कितने ही शारीरिक विकारों की जड़ अन्नमय कोश मे ही होती है | उनका निवारण दवा -दारू से नहीं , यौगिक साधनों से हो सकता है | जैसे संयम , चिकित्सा , शल्य चिकित्सा , व्यायाम , मालिश , विश्राम , उत्तम आहार विहार , जलवायु आदि से शारीरिक स्वस्थ्य मे बहुत कुछ अंतर् हो सकता है | वैसे ही ऐसी भी प्रक्रिया है जिनके द्वारा अन्न मय कोश को परिमार्जित एवँ परिपुष्ट किया जा सकता है और विविध विधि शारीरिक अपूर्णताओं से छुटकारा पाया जा सकता है |
ऐसी पद्धतियों मे

१. उपवास
२. आसन
३. तत्व शुद्धि
४. तपश्चर्या
ये चार मुख्य हैं |

**अन्नमय कोश की शुद्धि के चार साधन --१.उपवास**

अन्नमय कोश की अनेक सूक्ष्म विकृतियों का परिवर्तन करने मे उपवास वही काम करता है जो चिकित्सक के द्वारा चिकित्सा के पूर्व जुलाब देने से होता है | ( चिकित्सक इसलिए जुलाब आदि देते हैं क्योकि दस्त होने से पेट साफ़ हो और औषधि अपना काम कर सके )

मोटे तौर पर उपवास के लाभ -पेट मे रुका अपच पचता है , विश्राम करने से पाचक अंग नव चेतना के साथ दूना काम करते हैं , आमाशय मे भरे अपक्व अन्न से जो विष बनता है वह ऐसे मे बनना बंद हो जाता है , आहार की बचत से आर्थिक लाभ होता है | डाक्टरों का यह भी निष्कर्ष है की स्वल्पाहारी दीर्घ जीवी होते हैं | ( ठूस- ठूस कर खाने वाले पेट को चैन ना लेने देने वाले लोगों की जीवनी शक्ति को नुक्सान पहुचता है, आयु कम होती है , रोग ग्रस्तता होती है )

गीता मे 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः' श्लोक मे बताया गया है की उपवास से विषय -विकारों की निवृति होती है | मन का विषय विकारों से रहित होना एक बहुत बड़ा मानसिक लाभ है उसे ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक शुभ कार्य के साथ उपवास को भारतीय परमपराओं मे जोड़ दिया गया है | ( कन्यादान के दिन माँ-बाप उपवास करते हैं , अनुष्ठान के दिन आचार्य और यजमान , नौ दुर्गा मे भी आंशिक या पूर्ण उपवास की परंपरा है ...आदि )

रोगियों के लिए उपवास को 'जीवन मूरी' कहा गया है | संक्रामक , कष्टसाध्य एवँ खतरनाक रोगों मे लंघन भी चिकित्सा का एक अंग है | ( निमोनिया , प्लेग , सन्निपात , टाइफाइड मे उपवास कराया जाता है )

इस तथ्य को हमारे ऋषियों ने अनिवार्य समझा था | इसी कारण हर महीने कई उपवासों का धार्मिक महत्व स्थापित किया था |

अन्नमय कोश की शुद्धि के लिए उपवास का विशेष महत्व है | शरीर मे कई जाति की उपत्यिकाएँ देखी जाती हैं , उन्हें शरीर शास्त्री ' नाड़ी -गुच्छक ' कहते हैं |वैज्ञानिक इन् नाड़ी गुच्छक के कार्यों का कुछ विशेष परिचय अभी प्राप्त नहीं कर पाए हैं , पर योगी लोग जानते हैं की ये उपत्यिकाएँ शरीर मे अन्नमय कोश की बंधन ग्रंथियां हैं | मृत्यु होते ही सब बंधन खुल जाते हैं और फिर एक भी गुच्छक दृष्टिगोचर नहीं होता | सब उपत्यिकाएँ अन्नमय कोश के गुण दोषों का प्रतीक हैं |

'इन्धिका' जाति की उपत्यिकाएँ चंचलता , अस्थिरता , उद्विग्नता की प्रतीक हैं | जिन व्यक्तियों मे इस जाति के नाडी गुच्छक अधिक हों तो उनका शरीर एक स्थान पर बैठकर काम न कर सकेगा | 'दीपिका' जाति की उपत्यिकाएँ जोष , क्रोध ,शारीरिक उष्णता, अधिक पाचन ,गर्मी ,खुश्की आदि उत्पन्न करेंगी | ऐसे गुच्छकों की अधिकता वाले रोग चर्म रोग , फोड़ा , फुंसी , नकसीर फूटना , पीला पेशाब , आँखों मे जलन आदि रोगों के शिकार होते हैं |

इसी प्रकार अन्य गुच्छक मोचिका , पूषा , चन्द्रिका आदि हैं इनकी अधिकता भिन्न -भिन्न प्रकार के रोगों के कारण बनते हैं | ऐसे उपत्यिकाओं की भिन्न भिन्न ९६ जातियां मानी जाती हैं | ये ग्रंथियां ऐसी हैं जो शारीरिक स्थिति को अच्छानुकूल बनाने मे बाधक होती हैं | मनुष्य चाहता है की मै अपने शरीर को ऐसा बनाऊ , वह उपाय भी करता है पर कई बार वे उपाय सफल नहीं होते | कारण यह है की ये उपत्यिकाएँ शरीर मे भीतर ही भीतर ऐसी क्रिया और प्रेरणा उत्पन्न करती हैं जो बाह्य प्रयत्नों को सफल नहीं होने देती और मनुष्य अपने आपको बार बार असफल एवँ असहाय महसूस करता है |

अन्नमय कोश को शरीर से बांधने वाली ये उपत्यिकाएँ शारीरिक एवँ मानसिक अकर्मों मे उलझकर विकृत होती हैं तथा सत्कर्मों से सुव्यवस्थित रहती है | आहार विहार का संयम तथा सात्विक दिनचर्या ठीक रखना , प्रकृति के आदेशों पर चलने वालों की उपत्यिकाएँ

सुव्यवस्थित रहती हैं | साथ ही कुछ अन्य यौगिक उपाय भी हैं जो उन आंतरिक विकारों पर काबू पा सकते हैं जिन्हें केवल वाह्य उपचारों से सुधारना कठिन है |

उपवास से उपत्यिकाओं के संशोधन , परिमार्जन और सुसंतुसन से बड़ा सम्बन्ध है | योग साधना मे उपवास का एक सुविस्तृत विज्ञान है | अमुक अवसर पर ; अमुक मास मे ; अमुक मुहूर्त मे ; अमुक प्रकार से उपवास करने का अमुक फल होता है | ऐसे आदेश शास्त्रों मे जगह जगह मिलते हैं |

ऋतुओं के अनुसार शरीर की ६ अग्नियाँ न्यूनाधिक होती रहती हैं | ऊष्मा , बहुवृच , ह्वादी, रोहिता , आत्पता , व्याती यह ६ शरीरगत अग्नियाँ ग्रीष्म से लेकर बसंत तक ६ ऋतुओं मे क्रियाशील रहती हैं | इनमे से प्रत्येक के गुण भिन्न -भिन्न हैं | १. उत्तरायण , दक्षिणायन की गोलार्ध स्थिति २. चन्द्रमा की बढ़ती घटती कलाएं ३. नक्षत्रों का भूमि पर आने वाला प्रभाव ४. सूर्य की अंश किरणों का मार्ग ,,इनसे ऋतू अग्नियों का सम्बन्ध है अतः ऋषियों ने ऐसे पुण्य पर्व निश्चित किये हैं जिससे अमुक प्रकार से उपवास करने पर अमुक प्रभाव हो |

उपवासों के पांच भेद हैं --१. पाचक ( जो पेट की अपच , अजीर्ण , कोष्ठबद्धता को पचाते हैं ) २. शोधक ( जो भूखे रहने पर रोगों को नष्ट करते हैं इन्हें लंघन भी कहते हैं ) ३. शामक ( जो कुविचारों , मानसिक विकारों , दुष्प्रवृतियों एवँ विकृत उपत्यिकाओं को शमन करते हैं ) ४. आनस ( जो किसी विशेष प्रयोजन के लिए , दैवी शक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए किये जाते हैं ) ५. पावस ( जो पापों के प्रायश्चित के लिए होते हैं )

आत्मिक और मानसिक स्थिति के अनुरूप कौन सा उपवास उपयुक्त होगा और उसके क्या नियमोपनियम होने चाहिए इसका निर्णय करने के लिए गंभीरता की आवश्यकता है |

पाचक उपवास मे भोजन तब तक छोड़ देना चाहिये जब तक भूख ना लगे | एक दो दिन का उपवास करने से कब्ज पच जाता है | पाचक उपवास मे नीम्बू का रस या अन्य पाचक औषधि की सहायता ली जा सकती है | शोधक उपवास के साथ विश्राम आवश्यक है यह लगातार आवश्यक है जबतक रोग खतरनाक स्थिति से अलग हट जाए | शामक उपवास दूध , छाछ फलों का रस आदि पर चलते हैं | इसमें स्वाध्याय , मनन , एकांत सेवन , मौन , जप , ध्यान , पूजा , प्रार्थना आदि आत्म शुद्धि के उपचार भी साथ मे करने चाहिए | अनास उपवास मे सूर्य की किरणों द्वारा अभीष्ट दैवी शक्ति का आह्वान करना चाहिए | पावस उपवास मे केवल जल लेना चाहिए और सच्चे हृदय से प्रभु से क्षमा याचना करना चाहिए की भविष्य मे वैसा अपराध नहीं होगा |

साधारणतः सप्ताह मे एक दिन उपवास अवश्य रहना चाहिए | गायत्री साधक के लिए रविवार सर्वाधिक उपयुक्त है |

**अन्नमय कोश की शुद्धि के चार साधन --२.आसन**

ऋषियों ने आसनों को योग साधना मे इसलिए प्रमुख स्थान दिया है क्योकि ये स्वस्थ्य रक्षा के लिए अतीव उपयोगी होने के अतिरिक्त मर्म स्थानों मे रहने वाली ' हव्य- वहा ' और 'कव्य- वहा ' तडित शक्ति को क्रियाशील रखते हैं| मर्म स्थल वे हैं जो अतीव कोमल हैं और प्रकृति ने उन्हें इतना सुरक्षित बनाया है की साधारणतः उन तक वाह्य प्रभाव नहीं पहुचता | आसनों से इनकी रक्षा होती है | इन् मर्मों की सुरक्षा मे यदि किसी प्रकार की बाधा पड जाए तो जीवन संकट मे पड सकता है | ऐसे मर्म स्थान उदर और छाती के भीतर विशेष हैं |

कंठ -कूप , स्कन्द , पुच्छ , मेरुदंड और वाह्य रंध्र से सम्बंधित ३३ मर्म हैं | इनमे कोई आघात लग जाए , रोग विशेष के कारण विकृति आ जाए , रक्ताभीषण रुक जाए और विष

-बालुका जमा हो जाए तो देह भीतर ही भीतर घुलने लगती है | बाहर से कोई प्रत्यक्ष या विशेष रोग दिखाई नहीं पड़ता , पर भीतर ही भीतर देह खोखली हो जाती है | नाडी मे ज्वर नहीं होता पर मुह का कड़वा पन, शरीर मे रोमांच , भारीपन , उदासी , हडफुटन , सिर मे हल्का स दर्द , प्यास आदि भीतरी ज्वर जैसे लक्षण दिखाए पड़ते हैं | वैद्य डाक्टर कुछ समझ नहीं पाते , दवा -दारु देते हैं पर कुछ विशेष लाभ नहीं होता |

मर्मो मे चोट पहुचने से आकस्मिक मृत्यु हो सकती है | तांत्रिक अभिचारी मारण का प्रयोग करते हैं तो उनका आक्रमण इन् मर्म स्थलों पर ही होता है | हानि , शोक , अपमान आदि की कोई मानसिक चोट लगे तो मर्म स्थल क्षत -विक्षत हो जाती है और उस व्यक्ति के प्राण संकट मे पड जाते हैं | मर्म अशक्त हो जाएँ तो गठिया , गंज , स्वेत्कंठ, पथरी , गुर्दे की शिथिलता , खुश्की , बवासीर जैसे न ठीक होने वाले रोग उपज पड़ते हैं |

सिर और धड मे रहने वाले मर्मो मे 'हव्य- वहा' नामक धन विद्युत का निवास और हाथ पैरों मे 'कव्य- वहा' ऋण विद्युत की विशेषता है | दोनों का संतुलन बिगाड जाए तो लकवा , अर्धांग , संधिवात जैसे उपद्रव खड़े होते हैं |

कई बार मोटे , तगड़े स्वस्थ दिखाई पड़ने वाले मनुष्य भी ऐसे मंद रोगों से ग्रसित हो जाते हैं , जो उनकी शारीरिक अच्छी स्थिति को देखते हुए न होने चाहिए थे | इन् मार्मिक रोगों का कारण मर्म स्थानों की गडबडी है | कारण यह है की साधारण परिश्रम या कसरतों द्वारा इन मर्म स्थानों का व्यायाम नहीं हो पाता | औषधियों की पहुच वहाँ तक नहीं होती | शल्य क्रिया या सूची -भेद ( इंजेक्सन ) भी उनको प्रभावित करने मे समर्थ नहीं होते | उस विकत गुत्थी को सुलझाने मे केवल 'योग -आसन ' ऐसे तीक्ष्ण अस्त्र हैं जो मर्म शोधन मे अपना चमत्कार दिखाते हैं |

ऋषियों ने देखा की अच्छा आहार -विहार रखते हुए भी , विश्राम -व्यायाम की व्यवस्था रखते हुए भी कई बार अज्ञात सूक्ष्म कारणों से मर्म स्थल विकृत हो जाता है और उसमे रहने वाली हव्य-वहा , कव्य -वहा तडित शक्ति का संतुलन बिगड़ जाने से बीमारी और कमजोरी आ धमकती है , जिससे योग साधना मे बाधा पड़ती है | इस कठिनाई को दूर करने के लिए उन्होंने अपने दीर्घकालीन अनुसंधान और अनुभव द्वारा 'आसन -क्रिया' का आविष्कार किया | आसनों का सीधा प्रभाव हमारे मर्म स्थलों पर पड़ता है | प्रधान नश-नाड़ियों और मांसपेशियों के अतिरिक्त सूक्ष्म कशेरुकाओ का भी आसनों द्वारा ऐसा आकुंचन -प्राकुंचन होता है की उसमे जमे हुए विकार हट जाते हैं तथा फिर नित्य सफाई होते रहने से नए विकार जमा नहीं होते | मर्म स्थलों की शुद्धि , स्थिरता एवँ परिपुष्टि के लिए आसनों को अपने ढंग का सर्वोत्तम उपचार कहा जा सकता है | (( आसन अनेक हैं उसमे से ८४ प्रधान हैं इनकी विस्तृत व्याख्या के लिए पूज्य पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा लिखित पुस्तक 'बलवर्धक व्यायाम' देखें ))
आठ आसन ऐसे हैं जो सभी मर्म स्थानों पर अच्छा प्रभाव डालते हैं ...

१. सर्वांगासन २. बद्ध-पद्मासन ३.पाद हस्तासन ४. उत्कटासन ५. पश्चिमोत्तान आसन ६. सर्पासन ७. धनुरासन ८. मयूरासन

इन् सभी से जो लाभ होता है उसका सम्मिलित लाभ सूर्य-नमस्कार से होता है | यह एक ही आसन कई आसनों के मिश्रण से बना है | इसे प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व करना चाहिए |

## अन्नमय कोश की शुद्धि के चार साधन --३. तत्व-शुद्धि

यह सृष्टि पंच तत्वों से बनी हुई है | प्राणियों के शरीर भी इन्ही तत्वों से बने हुए हैं | मिटटी , जल , वायु , अग्नि और आकाश इन् पांच तत्वों का यह सबकुछ संप्रसार है | जितनी वस्तुएं दृष्टिगोचर होती हैं या इन्द्रियों द्वारा अनुभाव मे आती हैं उन सब की उत्पत्ति पंच

तत्वों द्वारा हुई हैं | वस्तुओं का परिवर्तन , उत्पत्ति , विकास तथा विनास इन् तत्वों की मात्रा मे परिवर्तन आने से ही होता है | यह प्रसिद्द है की जलवायु का स्वस्थ्य पर प्रभाव पड़ता है शीत प्रधान देशों के तथा यूरोपियन देशों का रंग रूप , कद -स्वस्थ्य अफ्रीका के उष्ण प्रदेश वासियों के रंग -रूप , कद , स्वस्थ्य से सर्वथा भिन्न होता है | पंजाबी , काश्मीरी , बंगाली , मद्रासी लोगों के शरीर तथा स्वस्थ्य की भिन्नता प्रत्यक्ष है | जलवायु का ही अंतर् है |

किन्ही प्रदेशों मे मलेरिया , पीला बुखार , पेचिस , चर्म रोग , फील पावं , कुष्ट आदि रोगों की बाढ़ सी रहती है और किन्ही स्थानों की जलवायु ऐसी होती है की वहाँ जाने पर तपेदिक सरीखे कष्ट साध्य रोग भी अच्छे हो जाते हैं | पशु पक्षी , घास -अन्न , फल , औषधि आदि के रंग ,रूप ,स्वस्थ्य , गुण , प्रकृति आदि मे भी जलवायु के अनुसार अंतर पड़ता है इस प्रकार वर्षा, गर्मी -सर्दी का तत्व-परिवर्तन प्राणियों मे अनेक प्रकार के सूक्ष्म परिवर्तन कर देता है |

आयुर्वेद शास्त्र मे वात , पित्त , कफ का असंतुलन रोगों का कारण बताया है | वात का अर्थ है वायु , पित्त का अर्थ है गर्मी और कफ का अर्थ है जल | पंच तत्वों मे पृथ्वी शरीर का स्थिर आधार है | मिटटी से ही शरीर बना है और जला देने या गाड़ देने पर मिटटी रूप मे ही इसका अस्तित्व रह जाता है | इसलिए पृथ्वी तत्व शरीर का स्थिर आधार होने से वह रोग आदि का कारण नहीं बनता |

दूसरे आकाश का सम्बन्ध मन से बुद्धि और इन्द्रियों की सूक्ष्म तन्मात्राओं से है | स्थूल शरीर पर जलवायु और गर्मी का ही प्रभाव पड़ता है और उन्ही प्रभावों के आधार पर रोग एवँ स्वस्थ्य बहुत कुछ निर्भर रहते हैं | वायु की मात्रा मे अंतर् आ जाने से गठिया , लकवा , दर्द , कंप , अकडना , गुल्म , हड्फुतन, नाडीविक्षेप आदि रोग होते हैं | तत्व के विकास से

फोड़े -फुंसी , चेचक ज्वर, रक्त पित्त , हैजा , दस्त , क्षय ,स्वास उपदंश , रक्त विकार आदि बढते हैं |

जल तत्व की गडबडी से जलोदर ,पेचिस, संग्रहणी, मलमूत्र, प्रमेह स्वप्न दोष , सोम , प्रदर , जुकाम , खांसी आदि रोग पैदा होते हैं | अग्नि की मात्रा कम हो तो शीत , जिकाम , अकडन , अपच , शिथिलता शरीखे रोग उठ खड़े होते हैं | इस प्रकार अन्य तत्वों का घटना बढ़ना अनेक रोग उत्पन्न करता है |

आयुर्वेद के मत से मत से विशेष प्रभावशाली , गतिशील सक्रीय एवँ स्थूल शरीर को स्थिर करने वाले कफ वात पित्त अर्थात जल वायु गर्मी ही है और दैनिक जीवन मे जो उतारचढाव होते रहते हैं उनमे इन् तीनों का ही प्रधान कारण होता है | फिर भी शेष दो तत्व पृथ्वी और आकाश शरीर पर स्थिर रूप मे काफी प्रभाव डालते हैं |

मोटा या पतला होना , लंबा या ठिगना होना , रूपवान या कुरूप होना , गोरा या काला होना , कोमल या सुदृढ़ होना शरीर मे पृथ्वी तत्व की स्थिति से सम्बंधित है | इसी प्रकार चतुरता - मूर्खता , सदाचार -दुराचार , नीचता -महानता , तीव्र बुद्धि , दूरदर्शिता व खिन्नता -प्रसन्नता एवँ गुण , कर्म , स्वभाव , इच्छा , आकांछा , भावना , आदर्श , लक्ष्य आदि बातें इस पर निर्भर रहती हैं की आकाश तत्व की स्थिति क्या है ? उन्माद , सनक , दिल की धडकन , अनिद्रा , पागलपन - दु: स्वप्न , मिर्गी , मूर्छा , घबडाहट , निराशा आदि रोग मे भी आकाश ही प्रधान कारण होता है | तत्वों की मात्रा मे गडबडी पड़ जाने से स्वस्थ्य मे निश्चित रूप से खराबी आ जाती है | जलवायु सर्दी गर्मी ( ऋतू प्रभाव ) के कारण रोगी मनुष्य निरोग और निरोग रोगी बन सकता है |

योग साधकों को जान लेना चाहिए की पंच तत्वों से बने शरीर को सुरक्षित रखने का महत्व पूर्ण आधार यह है की देह मे सभी तत्व स्थिर मात्रा मे रहें | गायत्री के पांच मुख शरीर मे

पांच तत्व बनकर निवास करते हैं यही पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मइन्द्रियों को क्रियाशील रखते हैं | लापरवाही , अव्यवस्था और आहार -विहार मे असंयम से तत्वों का संतुलन बिगड़ कर रोग ग्रस्त होना एक प्रकार से पंच मुखी गायत्री माता का देह -परमेश्वरी का तिरष्कार करना है |

**अन्नमय कोश की शुद्धि के चार साधन --३. तत्व-शुद्धि**

अन्नमय कोश के परिमार्जन के लिए उपाय 'तत्व-शुद्धि' है | स्थूल रूप से शरीर के पंच -तत्वों को ठीक रखने के लिए जल , वायु , ऋतू , प्रदेश और वातावरण का ध्यान रखना आवश्यक है | सूक्ष्म रूप से पंचीकरण विद्या के अनुसार तत्वज्ञान प्राप्त करके आत्मतत्व और अनात्म तत्व के अंतर् को समझते हुए प्रपंच से छुटकारा पाना चाहिए | तत्व-शुद्धि के दोनों ही पहलू महत्वपूर्ण हैं | जिसे अपना अन्नमय कोश ठीक रखना है उसे व्यावहारिक जीवन मे पंचतत्वों की शुद्धि सम्बन्धी बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए |

**१. जल-तत्व की शुद्धि :**

जल से शरीर और वस्त्रों की शुद्धि बराबर करता रहे | स्नान करने का अर्थ मात्र मैल छुड़ाना नहीं है वरन पानी मे रहने वाले ' विशिवा ' नामक विद्युत से देह को सतेज करना एवँ आक्सीजन , नाइट्रोजन आदि बहुमूल्य तत्वों से शरीर को मिलता भी है |

सुबह शौच जाने से लगभग २०-३० मिनट पूर्व एक गिलास पानी पीने से रात का अपच धुल जाता है और शौच साफ़ होता है |

पानी को सदा घूँट-घूँट कर धीरे -धीरे पीना चाहिए | हर घूँट के साथ यह भावना करते जाना चाहिए ' की इस अमृत-तुल्य जल मे शीतलता , मधुरता और शक्ति भरी हुई है उसे खीच

कर मै अपने शरीर मे धारण कर रहा हूँ ' इस भावना के साथ पिया हुआ पानी दूध के समान गुणकारक होता है |

जिन स्थानों का पानी भारी , खारी , तैलीय , उथला , तालाबों का तथा हानिकारक हो , वहाँ रहने पर अन्नमय -कोश मे विकार पैदा होता है | कई स्थानों मे पानी ऐसा होता है की वहाँ फील-पावँ , अंड-नासूर , जलोदर , कुष्ठ , खुजली , मलेरिया , जुएं -मच्छर आदि का बहुत प्रसार होता है | ऐसे स्थानों को छोड़कर स्वच्छ हलके सुपाच्य जल के समीप अपना निवास रखना चाहिए | धनिक लोग दूर स्थानों से ही अपने लिए उत्तम जल मंगवा सकते हैं |

कभी -कभी एनिमा द्वारा पेट मे जल चढाकर आंतों की सफाई कर लेनी चाहिए | उससे संचित मलों से उत्पन्न विष पेट मे से निकल जाते हैं और चित्त बड़ा हल्का हो जाता है | प्राचीन काल मे वस्ति-क्रिया योग का बड़ा आवश्यक अंग था | अब एनिमा यंत्र द्वारा यह क्रिया सुगम हो गयी है |

जल-चिकित्सा पद्धति रोग निवारण एवँ स्वस्थ्य संवर्धन के लिए बड़ी उपयुक्त है | डाक्टर लुइकने ने इस विज्ञान पर स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं | उनकी बताई पद्धति से किये गए कटी स्नान , मेहन स्नान , मेरुदंड स्नान , गीली चादर लपेटना , कपडे का फल-स्तर आदि से रोग निवारण मे बड़ी सहायता मिलती है |

**२. अग्नि -तत्व की शुद्धि:**

सूर्य के प्रकाश के अधिक संपर्क मे रहने का प्रयास करना चाहिए | घर की सभी खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए ताकि धुप और हवा खूब आती रहे | सबेरे की धुप नंगे शरीर पर लेने का प्रयास करना चाहिए | सूर्य टाप से तपाये हुए जल का उपयोग करना , भीगे बदन पर धुप

लेना उपयोगी है | सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणे स्वस्थ्य के लिए बड़ी उपयोगी साबित होती हैं | वे जल के साथ धुप का मिश्रण होने से खिच जाती हैं | धुप मे रखकर रंगीन कांच से सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा करने की चिकित्सा करने की विस्तृत विधि तथा अग्नि और जल के सम्मिश्रण से भाप बन जाने पर उसके द्वारा अनेकों रोगों क उपचार करने की विधि सूर्य-चिकित्सा विज्ञान की किसी भी प्रामाणिक पुस्तक मे देख सकते हैं |

रविवार को उपवास रखना सूर्य की तेजस्विता एवँ बलदायिनी शक्ति का आह्वान है | पूरा या आंशिक उपवास शरीर की कांति और आत्मिक तेज को बढ़ाने वाला सिद्ध होता है |

**३ . वायु-तत्व की शुद्धि :**

घनी आबादी के मकान जहाँ धुल-धुवां , सीलन की भरमार रहती है और शुद्ध वायु का आवागमन नहीं होता , वे स्थान स्वस्थ्य के लिए खतरनाक हैं | हमारा निवास खुली हवा मे होना चाहिए | दिन मे वृक्ष और पौधों से आक्सीजन वायु निकलती रहती है , वह मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी है | जहाँ तक हो सके वृक्ष -पौधों के बीच अपना दैनिक कार्यक्रम करना चाहिए | अपने घर आँगन चबूतरे आदि पर पौधे-वृक्ष आदि लगाने चाहिए |

प्रातःकाल की वायु बड़ी स्वास्थ्यप्रद होती है , उसे सेवन करने के लिए तेज चाल से टहलने केलिए जाना चाहिए | दुर्गंधित एवँ बंद हवा के स्थान से अपना निवास दूर ही रखना चाहिए | तराई , सीलन , नमी वाले स्थानों की वायु ज्वर आदि पैदा करती है | तेज हवा के झोंकों से त्वचा फट जाती है | अधिक ठंढी या गर्म हवा से निमोनिया या लू लगना जैसे रोग हो सकते हैं | इस प्रकार प्रतिकूल मौसम से अपनी रक्षा करनी चाहिए |

प्राणायाम द्वारा फेफड़ों का व्यायाम होता है | इसलिए स्वस्थ वायु के स्थान पर बैठ कर नित्य व्यायाम करना चाहिए |

**हवन करना :**

अग्नि तत्व के संयोग से हवन वायु को शुद्ध करता है | जो वायु अग्नि मे जलाई जाती है वह नष्ट नहीं होती वरन सूक्ष्म होकर वायु मंडल मे फ़ैल जाती है | भिन्न -भिन्न वृक्षों की समिधाओं और हवन सामग्रियों मे अलग अलग गुण हैं | उनके द्वारा ऐसा वातावरण रखा जा सकता है जो शरीर और मन को स्वस्थ बनाने मे सहायक हों | किस समिधा और किन -किन सामग्रियों से किस विधान के साथ हवन करने का क्या परिणाम होता है ? इसके लिए गायत्री यज्ञ विधान लिखा गया है |

गायत्री साधकों को अपने अन्नमय कोश की वायु शुद्धि के लिए कुछ हवन सामग्री बना कर रख लनी चाहिए , जिसे धूपदानी मे थोड़ी थोड़ी जलाकर उससे अपने निवास स्थान कि वायु शुद्धि करते रहना चाहिए |

चंदन , चुरा , देवदारु , जायफल , इलायची , जावित्री अगरत्गर अपूर , छार-छबीला , नागरमोथा , खस , कर्पूर -कचरी, तथा मेवायें , जो कूट करके थोडा घी और शक्कर मिलकर धुप बन जाती है इस धुप की बड़ी मनमोहक एवँ स्वास्थ्यवर्धक गंध आती है | बाजार से भी कोई अच्छी अगरबती या धूपबत्ती लेकर काम चलाया जा सकता है | साधना काल मे ऐसी व्यवस्था कर लेना उत्तम है |

सांस मुह से नहीं सदा नाक से ही लेना चाहिए | कपडे से मुह ढक कर नहीं सोना चाहिए और किसी के मुह से इतना पास नहीं सोना चाहिए कि उसके मुह से छोड़ी हुई सांस आपके भीतर जाए | धूल-धुवां और दुर्गन्ध भरी वायु से सदा बचना चाहिए |

**४ .पृथ्वी तत्व की शुद्धि :**

शुद्ध मिटटी मे विष निवारण की अद्भुत शक्ति होती है | गंदे हांथों को मिटटी से माँजकर शुद्ध किया जाता है | प्राचीन काल मे ऋषि मुनि ज़मीन खोद कर गुफा बना लेते थे और उसमे रहा करते थे इससे उनके स्वस्थ्य पर बड़ा अच्छा असर पड़ा करता था | मिटटी उनके शरीर के दूषित विकारों को खीच लेती थी साथ ही भूमि से निकालने वाले वाष्प द्वारा देह का पोषण भी होता रहता था | समाधि लगाने के लिए गुफाएं उपयुक्त स्थान समझी जाती हैं क्योकि चरों ओर मिटटी से घिरी होने के कारण शरीर को सांस द्वारा ही बहुत सा आहार प्राप्त हो जाता है और कई दिनों तक भोजन कि आवश्यकता नहीं पड़ती या कम भोजन से भी काम चल जाता है |

छोटे बालक जो प्रकृति के अधिक समीप हैं पृथ्वी के महत्व को जानते हैं , वे भूमि पर खेलना, लेटना, गद्दों तकियों के अलावा अधिक पसंद करते हैं | पशुओं को देखिये वे अपनी थकान मिटाने के लिए ज़मीन पर लोट लगाते हैं और लोट-पीट कर पृथ्वी की पोषण शक्ति से फिर ताजगी प्राप्त कर लेते हैं |तीर्थ यात्रा और धर्म कार्यों के लिए नंगे पैरों चलने का विधान है | तपस्वी लोग भूमि पर शयन करते हैं |

इन् प्रथाओं का उद्येश्य धर्म साधनों के नाम पर पृथ्वी कि पोषण शक्ति द्वारा साधकों को लाभान्वित करना ही है | पक्के मकानों कि अपेक्षा मिटटी के झोपड़ों मे रहने वाले सदा अधिक स्वस्थ रहते हैं |मिटटी के उपयोग द्वारा स्वस्थ्य सुधार मे हमें बहुत सहायता मिलती है | निर्दोष पवित्र भूमि पर नंगे पावँ टहलना चाहिए | जहाँ छोटी-छोटी हरी घास उग रही हो वहाँ टहलना तो और भी अच्छा है | पहलवान लोग चाहे वे अमीर ही क्यों न हों रुई के गद्दों पर कसरत करने की अपेक्षा मुलायम मिटटी के अखाड़ों मे ही व्यायाम करते हैं , ताकि मिटटी के अमूल्य गुणों का लाभ उनके शरीर को प्राप्त हो |

साबुन के स्थान पर मुल्तानी मिटटी का प्रयोग किया जा सकता है | वह मैल को दूर करेगी , विष को खीचेगी और त्वचा को कोमल ताजा , चमकीला और प्रफुल्लित कर देगी |

मिटटी शरीर पर लगाकर स्नान करना एक अच्छा उबटन है | गर्मी के दिनों मे उठने वाली मरोडीयाँ और फुन्सियाँ दूर हो जाती हैं सिर के बालों को मुल्तानी मिटटी से धोने का रिवाज अभी तक मौज़ूद है

यह बालों को काला बनाये रखने के लिए एक बहुत ही सुन्दर औषधि का कार्य करता है | फोड़े -फुंसी , दाद , खाज , गठिया , जहरीले जानवरों के काटने , सूजन , जख्म , गिल्टी , नासूर , दुखती हुई आँखों ; कुष्ठ रोग , रक्त विकार आदि रोगों पर गीली मिटटी बांधने से आश्चर्य जनक लाभ होता है | डा. लुइकने ने अपनी जल चिकित्सा मे मिटटी की पट्टी के अनेकों उपचार लिखे हैं | चूल्हे की जली हुई मिटटी से दाँत मांजने , नाक के रोगों मे मिटटी के ढेले पर पानी डालकर सूंघने , लू लगने पर पैरों के ऊपर मिटटी थोप लेने की विधि से लोग परिचित होने चाहिए |

किसी स्थान पर बहुत समय तक मल मूत्र डालते रहे तो डालना बंद कर देने के बाद भी बहुत समय तक वहाँ दुर्गन्ध आती रहती है | कारण यह है कि भूमि मे शोषण शक्ति है वह पदार्थों को सोख लेती है और उसका प्रभाव बहुत समय तक अपने अंदर धारण किये रहती है | पृथ्वी की सूक्ष्म शक्ति लोगों के सूक्ष्म विचारों और गुणों को सोखकर अपने मे धारण कर लेती हैं | जिन स्थानों पर हत्या , व्यभिचार , जुआ आदि दुष्कर्म होते हैं उन स्थानों का वातावरण ऐसा घातक होता है कि वहाँ जाने वालों पर उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता |

श्मशान भूमि जहाँ अनेक मृत शरीर नष्ट हो जाते हैं अपने मे एक भयंकरता छिपाए रहती है --वहाँ जाने पर एक विलक्षण प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है अनेक तांत्रिक साधनाएं तो ऐसी हैं जिनके लिए केवल मात्र मरघट का वातावरण ही उपयुक्त होता है |

भूमिगत प्रभाव से गायत्री साधकों को लाभ उठाना चाहिए | जहाँ सत्पुरुष रहते हैं , वहाँ स्वाध्याय , सद्विचार , सत्कार्य होते हैं , वे स्वप्न प्रत्यक्ष तीर्थ हैं , उन स्थानों का वातावरण साधक की सफलता मे बड़ा लाभदायक होता है | जिन स्थानों मे किसी समय कोई अवतार या दिव्य पुरुष रहे हों , उन स्थानों कि प्रभाव शक्ति का सूक्ष्म निरीक्षण करके तीर्थ बनाये गए हैं | जहाँ कोई सिद्ध पुरुष या तपस्वी बहुत काल तक रहे हों वह स्थान सिद्ध पीठ बन जाते हैं और वहाँ रहने वालों पर अनायास ही अपना प्रभाव डालते हैं |

सूक्ष्मदर्शी महात्माओं ने देखा है कि भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष लीला तरंगे अभी तक ब्रज भूमि मे बड़ी प्रभाव पूर्ण स्थिति मे मौजूद हैं | तीर्थवासियों के दूषित चित्तों के वावजूद इस भूमि की प्रभाव शक्ति अब भी बानी हुई है और साधक को उसका स्पर्श होते ही शांति मिलती है | कितने ही मुमुक्षु अपनी आत्मिक शांति के लिए इस पुण्य भूमि मे निवास करने का स्थायी या अल्पकालीन अवसर निकालते हैं | कारण यह है कि क्लेशयुक्त वातावरण के स्थान मे जितने श्रम या समय मे जितनी सफलता मिलती है उसकी अपेक्षा पुण्य भूमि के वातावरण मे कहीं जल्दी और कहीं अधिक लाभ होता है | तीर्थ स्थानों मे नंगे पैर भ्रमण करने का भी महात्म्य इसलिए है कि उन स्थानों की पुण्य तरंगे अपने शरीर से स्पर्श करके आत्मिक शांति का हेतु बने |

**आकाश तत्व की शुद्धि :**

आकाश तत्व पिछले चार तत्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म होने से अधिक शक्तिशाली है |विश्वव्यापी पोल मे , शून्याकाश मे एक शक्ति तत्व भरा हुआ है जिसे अंग्रेजी मे ईथर कहते हैं | पोले स्थान को खाली नहीं समझना चाहिए | वह वायु से सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं होता तो भी उसका अस्तित्व पूर्णतया प्रामाणित है | रेडियो द्वारा गायन , समाचार , भाषण आदि जो हम सुनते हैं वे ईथर मे , प्रकाश तत्व मे तरंगों के रूप मे आते हैं | जैसे पानी मे ढेला फेंक देने पर उसकी लहर बनती है और वह लहर जलाशय के अंतिम श्रोत तक चली जाती है उसी प्रकार ईथर ( आकाश ) मे शब्दों की तरंगे पैदा होती है और पलक मारते विश्व भर मे फ़ैल जाती है | इसी विज्ञान के आधार पर रेडियो यंत्र का आविष्कार हुआ | एक स्थान पर शब्द तरंगों के साथ बिजली की शक्ति मिलकर उसे अधिक बलवती करके प्रवाहित कर दिया जाता है | अन्य स्थानों पर जहाँ रेडियो यंत्र लगे है इन् आकाश मे बहने वाली तरंगों को पकड़ लिया जाता है और प्रेषित सन्देश सुने देने लगते हैं |

वाणी चार प्रकार की होती है .. १. बैखरी- जो मुह से बोली और कान से सुनी जाती है जिसे 'शब्द' कहते हैं |२. मध्यमा -जो संकेतों से , मुखाकृति से , भाव-भंगी नेत्रों से कही जाती है , इसे भाव कहते हैं |३. पश्यन्ती- जो मन से निकलती है और मन ही उसे सुन सकता है , इसे विचार कहते हैं | ४. परा - यह आकांक्षा , इच्छा , निश्चय , प्रेरणा , शाप , वरदान आदि के रूप मे अन्तःकरण से निकलती है , इसे संकल्प कहते हैं | यह चारों ही वाणियां आकाश मे तरंग रूप मे प्रवाहित होती है | जो व्यक्ति जितना ही प्रभावशाली है , उसके शब्द , भाव, विचार और संकल्प आकाश मे उतने ही प्रबल होकर प्रवाहित होते रहते हैं |

आकाश मे असंख्य प्रकृति के असंख्य व्यक्तियों द्वारा असंख्य प्रकार की स्थूल एवँ सूक्ष्म शब्दावली प्रेरित होती रहती है | हमारा अपना मन जिस केंद्र पर स्थिर होता है उसी जाति के असंख्य प्रकार के विचार हमारे मस्तिष्क मे धंस जाते हैं और अदृश्य रूप से उन अपने

पूर्व निर्धारित विचारों कि पुष्टि करना आरम्भ कर देते हैं | यदि हमारा अपना विचार व्यभिचार करने का हो तो असंख्य व्यभिचारियों द्वारा आकाश मे प्रेरित किये गए वैसे ही शब्द ,भाव ,विचार और संकल्प हमारे ऊपर बरस पड़ते हैं और वैसे ही उपाय सुझाव मार्ग बताकर उसी ओर उत्साहित कर देते हैं |

हमारे अपने स्व-निर्मित विचारों मे एक मौलिक-चुम्बकत्व होता है उसी के अनुरूप आकाशगामी विचार हमारी ओर खीचते हैं | रेडियो मे जिस स्टेशन के मीटर पर सुई कर दी जाए उसी के सन्देश सुनाई पड़ते हैं और उसी समय मे जो अन्य स्टेशन बोल रहे हैं , उनकी वाणी हमारे रेडियो से टकराकर लौट जाति वह सुने नहीं देती | उसी प्रकार हमारे अपने स्व-निर्मित मौलिक विचार ही अपने सजातियों को आमंत्रित करते हैं |

मारी लाश को देखकर कौवा चिल्लाता है तो सैकड़ों कौवे उसकी आवाज सुनकर जमा हो जाते हैं | ऐसे ही अपने विचार भी सजातियों को बुलाकर एक अच्छी खासी सेना जमा कर लेते हैं | फिर उस विचार , सैन्य की प्रबलता के आधार पर उसी दिशा मे कार्य भी आरम्भ हो जाता है |

आकाश तत्व की इस विलक्षणता को ध्यान मे रखते हुए हमें कुविचारों से विषधर सर्प की भांति सावधान रहना चाहिए | अन्यथा वे अनेक स्वजातियों को बुलाकर हमारे लिए संकट उत्पन्न कर देंगे | जब कोई कुविचार मन मे आवे तो तत्क्षण उसे मार भगाना चाहिए अन्यथा यह सम्पूर्ण मानस क्षेत्र को वैसे ही खराब कर देगा जैसे विष की बूँद सारे भोजन को बिगाड़ देती है |

मन मे सदा उत्तम उच्च सात्विक उदार विचारो को ही स्थान देना चाहिए जिससे उसी जाति के विचार अखिल आकाश से खीचकर हमारी ओर चले आवें और सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें उत्तम बात सोचते रहने स्वाध्याय मनन आत्म-चिंतन परमार्थ और उपासनमयी मनोभूमि हमारा बहुत कुछ कल्याण कर सकती है | यदि प्रतिकूल कार्य न हो रहे हों उच्च विधारधारा से ही सद्‌गति प्राप्त हो सकती है भले ही उन विचारों के अनुरूप कार्य न हो रहे हों |

संकल्प कभी नष्ट नहीं होते | पूर्वकाल मे ऋषि मुनियों के , महापुरुषों के जो विचार प्रवचन एवँ संकल्प थे वे अब भी आकाश मे गूँज रहे हैं यदि हमारी मनोभूमि अनुकूल हो तो उन दिव्य आत्माओं का पथ -प्रदर्शन एवँ सहारा भी हमें अवश्य प्राप्त होता रहेगा |

परब्रम्ह की ब्राह्मी प्रेरणाएँ शक्तियां किरणे तथा तरंगे भी आकाश द्‌वारा ही मानव अन्तःकरण को प्राप्त होती है | दैवी शक्तियां ईश्वर की विविध गुणों वाली किरणे ही तो हैं , आकाश द्‌वारा मन के माध्यम से उनका अवतरण होता है | शिव जी ने आकाशवाहिनी गंगा को अपने शिर पर उतारा था तब वह पृथ्वी पर बही थी | ब्रम्ह की सर्व प्रधान शक्ति आकाश वाहिनी गायत्री गंगा को साधक सबसे पहले अपने मनः क्षेत्र मे उतारता है | यह अवतरण होने पर ही जीवन के अन्य क्षेत्रों को यह पतित-पावनी पुन्यधारा पावन करती है |

**तपश्चर्या :**

आलसी और आरामतलब शरीर मे अन्नमय कोश की स्वस्थता स्थिर नहीं रह सकती | इसलिए १.उपवास २. आसन ३. तत्वशुद्‌धि के साथ ४. तपश्चर्या को प्रथम कोश अन्नमय कोश की सुव्यवस्था का आवश्यक अंग बताया गया है |

तप का अर्थ है --उष्णता , गति , क्रियाशीलता , घर्षण , संघर्ष , तितिक्षा कष्ट सहना |

किसी वस्तु को निर्दोष , पवित्र एवँ लाभदायक बनाना होता है तो तपाया जाता है | सोना तपने से खरा हो जाता है | डाक्टर पहले अपने औजारों को गर्म कर लेते हैं तब उनसे आपरेसन करते हैं | चाकू को सान पर न घिसा जाए तो काटने की शक्ति खो बैठेगा | हीरा खराद पर न चढ़ाया जाए तो उसमे चमक और सुंदरता पैदा न होगी | व्यायाम कष्ट साध्य श्रम किये बिना कोई मनुष्य पहलवान नहीं बन सकता | अध्ययन का कठोर श्रम किये बिना कोई विद्वान नहीं बन सकता | माता बच्चे को गर्भ मे रखे बिना , पालन पोषण का कष्ट सहे बिना मातृत्व का सुख लाभ नहीं प्राप्त कर सकती | लप्दों को धुप मे ना सुखाया जाए तो उनमे से बदबू आने लग जायेगी | ईटें यदि भट्टी मे ना पकें तो उनमे मजबूती नहीं आ सकती | माँ पार्वती ने तप करके मनचाहा वरदान पाया था |

भागीरथ ने तप करके गंगा को भूलोक मे बुलाया था | ध्रुव के तप से भगवान को द्रवित कर दिया था | तपस्वी लोग कठोर तपश्चर्या करके सिद्धियाँ प्राप्त करते थे | रावण , कुम्भकरण , मेघनाथ , हिरण्यकश्यप , भष्मासुर आदि आदि ने भी तप के प्रभाव से विलक्षण वरदान पाए थे | आज तक जिस किसी को जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह तप के ही बल से प्राप्त हुआ है | ईश्वर तापस्वी पर प्रसन्न होते हैं और उन्हें मनचाहा वरदान देते हैं | जो भी धनी , संपन्न , सुन्दर , स्वस्थ , विद्वान , प्रतिभाशाली , नेता , अधिकारी आदि के रूप मे चमक रहे हैं , उनकी चमक अभी के या पूर्व जन्मों के तप पर ही अवलंबित है | यदि वे नया तप नहीं करते हैं और पुराने तप को ही खा जाते हैं तो उनको चमक धुंधली होती जायेगी | जो लोग भी आज गिरे हैं उनके उठने का एक ही मार्ग है -तप | बिना तप के कोई भी सिद्धि , कोई भी सफलता नहीं मिल सकती -न ही सांसारिक न ही आत्मिक |

प्राचीन काल मे तपश्चर्या को बड़ा महत्व दिया जाता था जो व्यक्ति जितना परिश्रमी , कष्ट सहिष्णु , साहसी पुरुषार्थी और कार्यशील होता था उसकी उतनी ही प्रतिष्ठा होती थी

| धनी- गरीब , राजा-महाराजा सभी के बालक गुरूल भेजे जाते थे ताकि वे कठोर जीवन की शिक्षा प्राप्त करके अपने को इतना सुदृढ़ बना लें की आपत्तियों से लड़ना और संपत्ति को प्राप्त करना सुगम हो सके | आज तप के, कष्ट -सहिष्णुता के महत्व को लोग भूल गए हैं और आराम तलबी , आलस्य , नजाकत को अमीरी का चिन्ह मानने लगे हैं फलस्वरूप पुरुषार्थ घटता जाता है योग्यता द्वारा उपार्जन करने की अपेक्षा लोग छल धूर्तता और अन्याय द्वारा बड़े बनने का प्रयत्न कर रहे हैं | गायत्री साधकों को तपस्वी होना चाहिए , अस्वाद व्रत , उपवास , ऋतू प्रभावों का सहना , तितिक्षा , घर्षण आत्म्कल्प , प्रदातव्य , निकासन , साधन , ब्रम्हचर्य , चंद्रायन , मौन अर्चन , समय के महत्व को पहचानना , कर्तव्यपरायण होना यह गायत्री साधकों के लिए अनिवार्य है |

परोपकार , लोकसेवा , सत्कार्य के लिए दान , यज्ञ भावना से किये जाने वाले पारमार्थिक जीवन प्रत्यक्ष तप हैं | दूसरों के लाभ के लिए अपने स्वार्थों का बलिदान करना तपस्वी जीवन का प्रधान चिन्ह है | आज की स्थिति मे प्राचीन काल की भांति तप नहीं किये जा सकते अब शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं रह गयी कि भागीरथ पार्वती या रावण के जैसे उग्र तप किएय जा सकें दीर्घ काल तक निराहार रहना या बिना विश्राम किये लंबे समय तक साधना रत रहना आज संभव नहीं है वैसा करने से शरीर तुरंत पीड़ाग्रस्त हो जाएगा | सतयुग मे लंबे समय तक दान तप होते थे क्योकि उस समय शरीर मे वायु तत्व प्रधान था | त्रेता मे शरीर मे अग्नि तत्व की प्रधानता थी | द्वापर मे जल तत्व अधिक था | उन युगों मे जो साधनाएं हो सकती थी वह आज नहीं हो सकती क्योकि आज कलयुग मे मानव देहों मे पृथ्वी तत्व प्रधान है | पृथ्वी तत्व अन्य सभी तत्वों से स्थूल है इस लिए आधुनिक काल के शरीर उन तपस्याओं को नहीं कर सकते जो त्रेता मे आसानी से होती थी |

दूसरी बात यह है कि वर्तमान समय मे सामाजिक आर्थिक बौधिक व्यवस्थाओं मे परिवर्तन हो जाने से मनुष्य के रहन सहन मे बहुत अंतर् पड़ गया है बड़े नगरों के निवासियों मे यांत्रिक सभ्यता के बीच रहने के फलस्वरूप शारीरिक श्रम बहुत कम करना

पड़ता है और अधिकाँश मे कृतिम वातावरम के कारण शुद्ध जलवायु से भी वंचित रहना पड़ता है | ऐसी अवस्था मे शरीर को पूर्वकालीन तपयोग्य रखना कहाँ संभव हो सकता है ? कुछ समय पूर्व तक नेति धोती वस्ती नियोली बज्रोली कपल-भाति आदि क्रियाएँ आसानी से हो जाती थीं उनके करने वाले अनेक योगी देखे जाते थे पर अब युग प्रभाव से उनकी साधना कठिन हो गयी है जो किसी प्रकार इन् क्रियाओं को करने भी लगते हैं वह उनसे वह लाभ नहीं उठा पाते जो इनसे होनी चाहिए | अधिकाँश हठ योगी तो इन् कठिन साधनाओं के कारण किन्ही कष्ट साध्य रोगों से ग्रसित हो जाते हैं | रक्त -पित्त, अन्त्रदाह ,मूलाधार,कफ , अनिद्रा जैसे रोगों से ग्रसित होते हुए अनेक हठयोगी देखे हैं | इसलिए वर्तमान काल की शारीरिक स्थितियों का ध्यान रखते हुए तपश्चर्या मे बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है |

आज तो समाज सेवा , ज्ञान प्रचार , स्वाध्याय , दान , इन्द्रीय संयम आदि के आधार पर ही हमारी तप साधना होनी चाहिए |

अधिक जानकारी के लिए देखें http://hindi.awgp.org/